आसोज शुक्ल १, शनिवार, दिनांक - २९-०९-१९६२
गाथा-५९, ६१, ४९, १८३, २९०, ३१३
प्रवचन-५

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी रचित। इसमें शुद्ध सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है, वह ५९ गाथा से चलता है। यह गाथा साधारण चली। देखो! क्या कहते हैं? ज्ञान का सार। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका सार क्या है, यह यहाँ तारणस्वामी वर्णन करते हैं। उसकी ५९वीं गाथा है।

सुधं च सर्व सुद्धं च, सर्वन्यं सास्वतं पदं।
सुधात्मा सुद्ध ध्यानस्थ, सुधं संमिक्दर्सनं॥५९॥

शुद्ध सर्व पदार्थों में शुद्ध एक सर्वज्ञ स्वरूप अविनाशी पद है। इस जगत में छह द्रव्य हैं। छह द्रव्य हैं? छह द्रव्य सुने हैं? अनन्त जीव, पुद्गल अनन्तगुने, असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। इन छह द्रव्यों में '**सुधं च सर्व सुद्धं च**' **शुद्ध सर्व पदार्थों में शुद्ध एक सर्वज्ञस्वरूप अविनाशी पद है** अपना। जिसे निर्मल पर्याय हुई, वह तो शुद्ध है ही, परन्तु अपना स्वभाव सर्वज्ञ शुद्ध है, उसके ऊपर दृष्टि देकर प्रतीति सम्यग्दर्शन का अनुभव करना, इसका नाम शुद्ध सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? **एक सर्वज्ञस्वरूप अविनाशी पद है।** नाश बिना का पद। अपना स्वरूप अविनाशी सर्वज्ञ है, उसका अनुभव करके सर्वज्ञपद पर्याय प्रगट हुई, वह भी अविनाशी है। वह सर्वज्ञपद कभी वापस नहीं पड़ता।

और **वही शुद्ध ध्यान का विषयभूत ध्येय शुद्धात्मा है।** देखो! वह शुद्ध ध्यान का विषय—लक्ष्य—ध्येय, वह शुद्धात्मा है। अपना पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी भगवान, वही सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय है। सम्यग्दर्शन, ऐसे शुद्ध आत्मा के अभिमुख परिणाम करके प्रतीति करता है, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? और **शुद्धात्मा का ध्यान ही शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन है।** देखो, उसे ही शुद्ध सम्यग्दर्शन निश्चय कहते हैं। यह ध्यान लिया है। ध्यान का अर्थ? अनादिकाल से पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत, भक्ति आदि विकल्प, उसमें एकाग्रता होना, वह तो

परसमय में एकाग्रता हुई, वह तो मिथ्यादृष्टिपना है। समझ में आया? शुभाशुभ परिणाम में एकाग्रता होना, वह तो मिथ्यादृष्टिपना है, परसमय है। उस शुभाशुभ परिणाम से रहित त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव की सर्वज्ञशक्तिरूप भगवान अपना आत्मा, उसके अन्तर्मुख अभिप्राय करके अनुभव में प्रतीति करना, इसका नाम तारणस्वामी उसे सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। देखो, यह वाडा को निकाल देते हैं। शोभालालजी! लो, यह ५९ गाथा हुई। समझ में आया?

इस परीक्षा के कल में बोल थे नहीं कुछ? परीक्षा थी न परीक्षा, क्या था? परीक्षा तो दूसरे में थी, उसमें नहीं होगी। श्रावकाचार गाथा ४९। पृष्ठ ५४। यह परीक्षा का बोल नहीं चला था रात्रि में? तो उसमें एक में दो आंटी मार दी सेठ ने। परसों सुनूँगा। ऐसा करके परसों का दिन निश्चित कर दिया। ५४ है न ५४। देखो, ४९ गाथा है। है? यह श्रावकाचार है, श्रावकाचार है। समझ में आया? उसमें ४९वीं गाथा है।

विन्यानं जेवि जानंते, अप्पा पर परषये।
परिचये अप्प सद्भावं, अंतर आत्मा परषये॥४९॥

क्या कहते हैं? **जो कोई... 'अप्पा पर' आत्मा और पर को परीक्षा करके (पहिचानता है।)** है? स्व-पर की परीक्षा करना। समझना नहीं, परीक्षा करना नहीं। सेठ! देखो, रात्रि में कहा था न? परीक्षा आयी। तो सेठ ने कहा कि परीक्षा परसों चलेगी। ऐसा करके परसों का दिन माँग लिया। ठीक है। समय आवे वह चूके? समझ में आया? कहते हैं कि भगवान आत्मा मैं कौन हूँ? ऐसी परीक्षा करनी चाहिए। ऐसे का ऐसा मिलता नहीं। शरीर, वाणी, मन से मैं पर, पुण्य-पाप के विकल्प शुभाशुभ से पर, अपना स्वरूप पूर्ण सर्वज्ञस्वभावी जो अभी कहा न यहाँ? यह ज्ञानसमुच्चयसार में। देखो! **'सर्वन्यं सास्वतं पदं'** मैं ही सर्वज्ञ शाश्वत् पद हूँ, ऐसी परीक्षा करनी चाहिए। पण्डितजी! ऐसा का ऐसा समझे बिना मान ले कि भगवान ने कहा वह सत्य। तुझे कहाँ सत्य आया? भगवान कहते हैं, सत्य ऐसे नहीं आता। परीक्षा करना चाहिए। सोना की परीक्षा नहीं करते? कसौटी लगाते हैं या नहीं? तम्बाकू की परीक्षा नहीं करते तुम? देखो, तम्बाकू अब दूसरा ऊँचा तम्बाकू पीकर आते हैं। ऐसी गन्ध मारता है उसमें। यह दूसरे

प्रकार की तम्बाकू है, ऐसा लगता है। अनुमान से भी ऐसा लगता है। तो अच्छे में अच्छी तम्बाकू पीते हैं या परीक्षा किये बिना पीते हैं? परीक्षा करके।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रावकाचार है यहाँ तारणस्वामी का। तारणस्वामी। एक-एक ग्रन्थ में से थोड़ी एक-दो गाथा (लेते हैं)। हमारे शोभालालजी ने प्रश्न किया था कि थोड़ा उपदेश शुद्धसार में से लेना। सवेरे कहा था। इन्होंने रात्रि में माँग की, यह सवेरे माँग करे। कहा, ठीक है। क्या कहते हैं, देखो!

जो कोई अपना आत्मा... देखो, यह तारणस्वामी श्रावकाचार की ४९ गाथा में है। अपना आत्मा क्या, उसकी अन्दर परीक्षा विचारधारा से करना और पर की परीक्षा करना। शरीर जड़ है, परवस्तु रागादि पर है, पुण्य-पाप वास्तव में आस्रव है, कर्म जड़ है, पर है—ऐसी बराबर परीक्षा करने से अपना और पर का सच्चा ज्ञान होता है। कहो, बराबर है? ...लालजी! परीक्षा किये बिना (मानना)? वाँचना नहीं, विचारना नहीं, सुनना नहीं और परीक्षा करना नहीं। भगवान कहे वह सच्चा। ऐसा नहीं चलता।

मुमुक्षु : समझ में नहीं आये तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : न समझ में आये ऐसा होता है? संसार की बात कैसे समझ में आती है? संसार की बात समझ में आती है या नहीं? रतनलालजी! यह तम्बाकू का व्यापार कैसे चले और चार लड़के क्या करते हैं, इसकी सब खबर नहीं? उसमें तो परीक्षा करते हैं, उसमें विचार करते हैं। यह परीक्षा नहीं करते। मैं आत्मा क्या हूँ ज्ञानस्वरूप। देखो! यह श्रावकाचार में भी यह लिया है। श्रावकों को पहले परीक्षा करनी चाहिए। समझ में आया? देव क्या? गुरु क्या? शास्त्र क्या? आत्मा की द्रव्य चीज़ क्या? शक्तियाँ क्या? पर्याय क्या? निर्मल कौन? विकार कौन?—इसकी बराबर परीक्षा करे तो स्व-पर का ज्ञान होता है। ऐसे पर की भी परीक्षा किये बिना सच्चा ज्ञान नहीं होता।

'विन्यानं' दोनों के विशेष ज्ञान को, भेदविज्ञान को... देखो, **विशेष सूक्ष्मता से जानना चाहिए।** लो! समझ में आया? **सूक्ष्मता से जानना चाहिए और आत्मा के**

सत्तारूप शुद्ध स्वभाव का, अपने शुद्ध स्वभाव की पहले परीक्षा करके परिचय पाता है। देखो! परिचय एक व्यक्ति का (करे) कि यह मनुष्य राजा है तो इसका परिचय करते हैं न? कि चलो, इसका परिचय करें तो इससे कुछ मिलेगा। वह तो पुण्य हो तो मिलता है। यहाँ पहले आत्मा की परीक्षा करना। आत्मा क्या है? यह आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... तो दोपहर में शक्ति का पिण्ड आत्मा (चलता है), उसका नाम आत्मा कहते हैं। ऐसी परीक्षा करके फिर परिचय पाता है। परिचय। **वही अन्तर आत्मा है, ऐसे पहिचानना चाहिए। 'परषये' 'परषये'** है न अन्तिम? समझ में आया? परीक्षा किये बिना मानना, वह सच्चा मानना होता नहीं। भगवान या सच्चे गुरु या सच्चे शास्त्र, ऐसा नहीं चलता। अपनी परीक्षा की कसौटी पर चढ़ाना चाहिए। अपने में उस कसौटी में (चढ़ावे)। सोना को चढ़ाते हैं या नहीं? ऐसी कसौटी करे कि यह पन्द्रहवान है, सोलहवान है, चौदहवान है। वलु कहते हैं न? क्या कहते हैं? इसी प्रकार भगवान आत्मा यह शुद्ध-शुद्ध कहते हैं तो क्या है? और मलिन तत्त्व रागादि क्या है? और जड़ कर्म, शरीर क्या है? सब **'परषये'** परीक्षा करने से उसका सम्यक् सच्चा दर्शन होता है। परीक्षा किये बिना सच्चा दर्शन होता नहीं। कहो, समझ में आया?

बहिरप्पा पुद्गलं दिस्टा, रचनं अनन्त भावना।
परपंचं जेन तिस्टंते, बहिरप्पा संसार स्थितं॥५०॥

बहिरात्मा पुद्गल को ही देखता है अनन्त भावों को रचता रहता है। क्या कहते हैं? देखो! यह श्रावकाचार की बात चलती है। श्रावक का सच्चा आचार। अज्ञानी राग, शरीर, स्त्री, पैसा और परिवार को देखकर आनन्द की रचना करता है, भावना करता है। उसमें मुझे आनन्द आयेगा। देखो, ५०वीं गाथा है। ५०वीं है न? **'बहिरप्पा पद्गलं दिस्टा, रचनं अनन्त भावना।'** पर में मुझे सुख है, शरीर में, स्त्री में, लक्ष्मी में, इज्जत में (सुख है)। देखो, श्रावक को कहते हैं, हों! यह श्रावक हुए पहले इसे ऐसा निर्णय करना चाहिए कि पर में आनन्द है ही नहीं। पुत्र-पुत्री और कर्म पैसे हुए पचास लाख, अस्सी लाख, करोड़पति। करोड़पति करोड़ तो धूल है, उसका पति है वह? लखपति। लखपति कहते हैं या नहीं? लाख रुपये का पति। जड़ का पति जड़ होता है। समयसार में कहा है कि सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है कि यदि शरीर, वाणी मेरी हो तो मैं उसका

स्वामी होऊँ और स्वामी होऊँ तब तो मैं जड़ हो जाऊँगा। तो ऐसा मुझमें है नहीं। विकार मेरी वस्तु नहीं, शरीर मेरी वस्तु नहीं। पर में आनन्द मानना, वह मेरी भ्रमणा है। ऐसा श्रावक सम्यग्दर्शन होने से पहले विचार करता है। समझ में आया? देखो! विषय, पैसे, इज्जत, मकान।

और **इस जड़ में मग्नता की भावना से जगत का प्रपंच बना रहता है।** जगत प्रपंच में (लगा हुआ रहता है)। बस, बनाओ, ऐसा बनाओ। पर में आनन्द मानता है। अपने आत्मा में आनन्द है, ऐसी परीक्षा तो की नहीं। अपनी परीक्षा की नहीं कि मेरा आनन्द मेरे पास है। मेरा आनन्द नहीं पुण्य-पाप में, मेरा आनन्द नहीं कर्म में, मेरा आनन्द नहीं लक्ष्मी या धूल में। लक्ष्मी अर्थात्? शोभालालजी! लक्ष्मी अर्थात् क्या? धूल। तुम्हारे मुख से कहना है। पैसेवाले के मुख से कहना है कि लक्ष्मी क्या है? वह धूल है। उसमें आनन्द नहीं। सेठी! है या नहीं? तब क्या है? '**संसार स्थितं**' संसार में उसकी स्थिति बढ़ जाती है। पर में आनन्द माननेवाले का संसार बढ़ जाता है तो उसका इसे विचार करना चाहिए। कहो, समझ में आया? इतनी बात यह हुई। क्या है? श्रावकाचार है न?

देखो, पुण्य का उत्साह। उसमें पृष्ठ १७४ है। १७४ है? पुण्य का उत्साह कहाँ है? गाथा में अन्तर है कुछ। पुण्य में उत्साह होना, यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है, ऐसा श्रावकाचार में कहा है। गाथा में अन्तर है कुछ। समझ में आया? और कहते हैं कि जो अपने अशुद्ध परिणाम होते हैं... देखो, उसमें लिखा है पृष्ठ १२२, गाथा ११६, गाथा ११६। क्या कहते हैं? गाथा ११६। क्या है देखो! श्रावकाचार, ११६ (गाथा)।

सुद्ध तत्वं न वेदंते, असुद्धं सुद्ध गीयते।
मद्यं ममत्त भावस्य, मद्य दोषं जथा बुधैः॥११६॥

यह मदिरा पीनेवाले हैं भाई! ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं? **जो कोई शुद्ध आत्म तत्त्व निर्मल नहीं जानते, नहीं अनुभव करते हैं किन्तु रागादि अशुद्ध आत्मा को शुद्ध है ऐसा गाता है, मानता है।** मैं पुण्यवन्त हूँ, मैं शुभ परिणाम हूँ, मेरे शुभ परिणाम मेरे हैं, ऐसा जो शुभ परिणाम में उत्साह करके गाता है, उसका गायन गाता है, प्रशंसा

करता है, शुभभाव की प्रशंसा करता है, **वह प्राणी मद्य के समान संसार में ममताभावरूप से वर्त रहा है, वह दारू पीते हैं।** मद्य जैसा दारू पीते हैं। शुभभाव... अपने गीत गाना, हमारे परिणाम, हमने शुभ ऐसा किया, हमने शुभ ऐसा किया। तो कहते हैं तू तो मद्य-दारू पीनेवाला है, पागल है। समझ में आया? ओहोहो! '**मद्य दोषं जथा बुधैः**' सर्वज्ञ परमात्मा ने उसे मद्य का दोष कहा है। कहो, समझ में आया? और फिर ११७।

जिन उक्तं सुद्ध तत्वार्थं, जेन सार्धं अव्रतं व्रति।
अन्यानी मिथ्या ममत्तस्य, मद्ये आरूढते सदा॥११७॥

व्रत रहित हो या व्रतधारी हो, जिनेन्द्र भगवान के कहे शुद्ध आत्मपदार्थ को नहीं साधन करते हैं... अन्तर निर्मलानन्द परमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान साधन नहीं करते तो वे ज्ञानरहित हैं और सदा ही मिथ्यात्व की ममतारूपी मद्य में आरूढ हैं। **मिथ्यारूपी श्रद्धा के मद्य में आरूढ़ हैं। उसको मद्यपानी कहने में आता है।** यह श्रावकाचार के अधिकार में चला है। समझ में आया? मद्य के पीनेवाले।

अब चलती है ६०वीं गाथा। ज्ञानसमुच्चयसार।

पूर्वं पूर्व परं जिनोक्त परमं, पूर्वं परं सास्वतं।
पूर्वं धर्मधुरा धरंति मुनयो, सुधं च सुधात्मनं॥
सुधं संमिक् दर्सनं च समयं, प्रोक्तं च पूर्वं जिनं।
न्यानं चरन समं सुयं च ममलं, संमिक्त वीर्जं बुधैः॥६०॥

६०वीं गाथा है। ज्ञानसमुच्चयसार। देखो, शब्दशः शब्द है या नहीं?

पूर्वं पूर्व परं जिनोक्त परमं, पूर्वं परं सास्वतं।
पूर्वं धर्मधुरा धरंति मुनयो, सुधं च सुधात्मनं॥
सुधं संमिक् दर्सनं च समयं, प्रोक्तं च पूर्वं जिनं।
न्यानं चरन समं सुयं च ममलं, संमिक्त वीर्जं बुधैः॥६०॥

अहो! **चौदह पूर्व जो जिनवाणी के भेद हैं....** चौदह पूर्व जो जिनवाणी के भेद हैं, वे '**पूर्व परं**' **अत्यन्त प्राचीन है।** अनादि काल से चले आते हैं। समझ में आया? चौदह पूर्व लिये हैं, देखो तारणस्वामी ने। यहाँ चौदह पूर्व अभी हैं नहीं। परन्तु लिया कि

चौदह पूर्व में क्या कहा है? चौदह पूर्व है न? उसमें क्या कहा है? कि **चौदह पूर्व जो जिनवाणी के भेद हैं अत्यन्त प्राचीन है। 'पूर्व परं' 'पूर्व परं'** अनादि से चले आते हैं। और **जिन भगवान के कहे हुए हैं... 'जिनोक्त'** जिन वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी में आया है।

'परमं पूर्वं परं सास्वतं' ये उत्कृष्ट परम अविनाशी हैं... 'परमं पूर्वं परं सास्वतं' अविनाशी है। त्रिकाल चला आता है ऐसा। और **'सुधं च सुधात्मनं धरंति मुनयो पूर्वं' मुनिगण पूर्वों के ज्ञानरूपी धर्म की धुरा के रूप में निर्मल शुद्धात्मा को धारण कर लेते हैं...** देखो, **मुनिगण पूर्वों के ज्ञानरूपी धर्म की धुरा के रूप में निर्मल शुद्धात्मा को धारण कर लेते हैं...** चौदह पूर्व में से निकालकर अकेला शुद्धात्मा धारण कर लेते हैं। चौदह पूर्व में शुद्धात्मा का कथन करके वीतरागी दृष्टि और अनुभव कराया है। समझ में आया? वाँचते नहीं। पण्डितजी! पण्डित व्यवस्थित वाँचते नहीं, हों! नहीं वाँचते तो फिर क्या? रोटियाँ खाना है? पुत्र-पुत्री और रोटी, यह तो सब अनादि काल से चला आता है।

क्या कहते हैं, देखो, अहो! भगवान के मुख में चौदह पूर्व जो निकले अनादि काल से चले आते हुए, उसमें से मुनि क्या निकालते हैं? कि **पूर्वों के ज्ञानरूपी धर्म की धुरा के रूप में निर्मल शुद्धात्मा को धारण कर लेते हैं...** मैं त्रिकाल शुद्ध परमानन्द सर्वज्ञपद, ऊपर आया न? **'सर्वन्यं सास्वतं पदं'** मैं ही सर्वज्ञ शाश्वत् पद हूँ, ऐसा चौदह पूर्व में से निकालते हैं। समझ में आया? और **शुद्धंसम्यग्दर्शनं—शुद्ध व निश्चय सम्यग्दर्शन है...** इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन, सच्चा दर्शन कहते हैं। **यही आत्मा है...** और उसे ही हम आत्मा **'समयं'** है न समय? समयसार अर्थात् समय। उसे समयसार कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा राग और पुण्य से रहित अनन्त शक्ति का एकरूप प्रभु, ऐसी शुद्धात्मा की दृष्टि करके अनुभव करना, वही समय अर्थात् आत्मा और उसका नाम समयसार। समझ में आया?

'पूर्वं जिनं प्रोक्तं च' प्राचीन काल से ही जिनेन्द्रों ने ऐसा कहा है। हम अभी कहते नहीं। प्राचीन अनन्त काल से तीर्थंकर ऐसा कहते आये हैं। कहते आये हैं अनन्त

काल से। चौदह पूर्व का सार भगवान आत्मा परमानन्द शुद्ध, अशुद्ध—पुण्य-पाप से रहित, उसका अनुभव करो, यह प्राचीन काल से चला आता है। समझ में आया? **'न्यानं चरन समं' ज्ञान और चारित्र के साथ... 'सुयं च ममलं' स्वयं ही आत्मा निर्मल है। यही आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन का बीज है।** यही आत्मज्ञान सम्यक् निश्चय का बीज है और **'बुधैः' विचारवानों के द्वारा यही जाननेयोग्य है।** ज्ञानियों, धर्मियों, विज्ञानियों, विचिक्षणों को यही जाननेयोग्य है, तो उसे सम्यग्दर्शन होगा, नहीं तो सम्यग्दर्शन होगा नहीं। कहो, समझ में आया? उसमें भी बहुत लिया है न? स्वाध्याय लिया है न? स्वाध्याय, सामायिक में लिया है। सामायिक है। पृष्ठ १७३। देखो! क्या कहते हैं, देखो! सामायिक। ३१३ श्लोक, ३१३ श्लोक। देखो, सामायिक इसे कहते हैं। यह ज्ञानसमुच्चयसार, इसमें से निकालकर तुमको देते हैं कि देखो! इसमें ऐसा कहा है।

सामाइयं च उत्तं, अप्पा परमप्पा सम्म संजुत्तं।
समय ति अर्थं सुधं, समतं सामाइयं जाने॥३१३॥

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव सामायिक किसे कहते हैं, यह तारणस्वामी ३१३ श्लोक में कहते हैं। **सामायिक प्रतिमा को कहते हैं जो सम्यग्दर्शनसहित हो...** पहले तो आत्मा का अनुभव होता है कि मैं रागरहित शुद्ध चिदानन्द हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन हो। **आत्मा को परमात्मा रूप जाने...** देखो, दूसरा पद है न? **'अप्पा परमप्पा' आत्मा को परमात्मा रूप जाने...** शोभालालजी! यह सामायिक की, सामायिक की लोगों ने, जाओ। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... सामायिक की। अरे भगवान! सामायिक क्या है, तुझे खबर भी नहीं। समझ में आया? यह सब सामायिक-सामायिक करते हैं न? भगवानजीभाई! सामायिक की, इतनी सामायिक की। अरे भगवान! सामायिक तो पहले आत्मा शुद्ध चैतन्य का दृष्टि में अनुभव होना चाहिए। निश्चय सम्यग्दर्शन है और फिर... समझ में आया?

आत्मा को परमात्मा रूप जाने... मैं ही परमस्वरूप आत्मा परमात्मा हूँ। **शुद्ध आत्मा को समतारूप करे... 'सुध अर्थं समय ति' शुद्ध आत्मा को समतारूप करे...** और **'समतं सामाइयं जाने' साम्यभाव को सामायिक जानो।** ऐसी अन्तर वीतराग

परिणति प्रगट हो, उसे भगवान सामायिक कहते हैं। दूसरे को सामायिक कहते नहीं। शोभालालजी! यह सेठिया होकर वाँचा ही नहीं कभी। सुना नहीं, वाँचा नहीं। देखो, णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... सामायिक कर ली। शुभराग किया। असामायिक है। ऐई! रतनलालजी! असामायिक है।

देखो, क्या कहते हैं देखो, फिर।

ति अर्थं सुध सुधं, सम सामाइयं च संसुधं।
परिनै सुध ति अर्थं, परिनामं सुध समय सुधं च॥३१४॥

जहाँ रत्नत्रय धर्म का निश्चयनय से शुद्ध विचार हो... भगवान अपना आत्मा परमानन्द शुद्ध ज्ञानपुंज है, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता का जहाँ विचार चलता हो। समझ में आया? उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! लोग तो कुछ न कुछ मानकर चढ़ गये हैं। ....लालजी! **जहाँ रत्नत्रय धर्म का निश्चयनय से शुद्ध विचार हो, जहाँ समताभाव हो वही शुद्ध सामायिक है।** पुण्य-पाप के दोनों विकल्प में समभाव है। पुण्य अच्छा और पाप बुरा, ऐसा है ही नहीं। शुभराग अच्छा और अशुभराग बुरा, ऐसी दृष्टि हट गयी है और शुद्ध आत्मा पर दृष्टि जम गयी है। उसे समता वीतरागी अविकारी परिणति होती है, उसे भगवान सामायिक कहते हैं। यह तारणस्वामी उसे सामायिक पुकार करते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं। हम ऐसा नहीं कहते हमारे घर का। भगवान ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! भारी कठिन पड़े। व्यवहार तो उड़ जाता है। अब सुन तो सही तेरा व्यवहार। व्यवहार सामायिक करता है तो व्यवहार करते-करते निश्चय सामायिक होगी। ....लालजी! नहीं?

मुमुक्षु : ....ऐसा मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होगी। तेरे व्यवहार विकल्प और राग से सामायिक कभी तीन काल में नहीं होगी। ऐसी दृष्टि किये बिना तेरे स्वरूप में रमणता की सामायिक कभी आयेगी नहीं। समझ में आया?

जहाँ परिणाम शुद्ध हो... देखो, **समताभाव हो, वही शुद्ध सामायिक है। जहाँ शुद्धरत्नत्रयरूप परिणमन हो...** है न? यह ३१४ चलती है न? ३१४ चलती है। **जहाँ**

समताभाव हो... और **जहाँ शुद्धरत्नत्रयरूप परिणमन हो...** देखो, परिणमन **'परिन'** शब्द पड़ा है। क्या कहते हैं ? कि मैं शुद्ध चैतन्यघन हूँ। पुण्य-पाप से रहित दृष्टि होकर शुद्धरूप वीतरागी परिणमन हो परिणमन; परिणमन अर्थात् पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था, शुद्ध वीतरागी परिणमन हो, उसे सामायिक कहते हैं। लो! यह तो क्षुल्लक हो गये और सामायिक हो गयी। सवेरे, दोपहर तीन-तीन बार करते थे न ? मिथ्या सामायिक थी। समझ में आया ? यह तो सबको सामायिक समझना है न! अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत कर डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कर डाली खोटी। शुद्ध हो वही सामायिक है। समझ में आया ? ओहोहो! फिर सामायिक।

समरुवं सम दिट्ठं, सम सामाइयं च जिन उत्तं।
मन चवलं सुध थिरं, अप्प सरुवं च सुध सम समयं॥३१५॥

जहाँ समतामयी रूप हो,... वीतरागी जहाँ अन्तर दृष्टि और अनुभव हो **समतामयी दृष्टि हो, जहाँ समभाव हो उसी को सामायिक श्री जिनेन्द्र ने कहा है...** लो! तारणस्वामी कहते हैं, हों! हम नहीं कहते, जिनेन्द्र ने कहा है। पाठ है या नहीं, देखो! **'सम सामाइयं च जिन उत्तं' 'जिन उत्तं'** वीतराग त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने उसे सामायिक कहा है। **जहाँ समभाव हो उसी को सामायिक श्री जिनेन्द्र ने कहा है। जहाँ चंचल मन स्थिर हो...** देखो, णमो अरिहंताणं जाप करते हैं न विकल्प, उससे हटकर स्थिर हो। **शुद्धोपयोग में लीन हो... 'सुध थिरं'** है न ? **'अप्प सरुवं च सुध सम समयं' जहाँ आत्मा का स्वरूप शुद्ध समतारूप अनुभव में आवे वही सामायिक है।** देखो, उसे यहाँ सामायिक कहा। कहो, समझ में आया ? देखो, यह पूर्व में भी ऐसा कहा। ६०वीं गाथा आयी न ? ६१। उपदेश तो यह ही है। श्रावकाचार है न यह ? श्रावकाचार नहीं। उपदेश... क्या माँगा है इसने ? उपदेशशुद्धसार माँगा था अभी सवेरे। पृष्ठ १२८। देखो, क्या है ? १८३ गाथा, १८३ गाथा। यह उपदेश का सार सवेरे माँगा था तुमने। भाई उपदेश कहते हैं।

गुरु उवएस स उत्तं, सूष्यम परिनाम कम्म संषिपनं।
गुरुं च विमल सहावं, दर्सन मोहंध समल गुरुवं च॥१८३॥

'**गुरु उवएस स उत्तं**' गुरु का उपदेश '**स उत्तं**' उसे कहते हैं। '**सूष्यम परिनाम कम्म संषिपनं**' सूक्ष्म परिणाम से कर्म का नाश हो, ऐसा भगवान गुरु का सूक्ष्म परिणाम का उपदेश चलता है। जिससे पुण्य-पाप और कर्म का हो, ऐसा गुरु का उपदेश है। यह उपदेशशुद्धसार। समझ में आया? थोड़ा श्रावकाचार में से लिया, यह लिया थोड़ा। देखो, गुरु महाराज ऐसा उपदेश देते हैं। है गुरु उपदेश? देखो! उत्तम... उत्तम कहते हैं। '**सूष्यम परिनाम कम्म संषिपनं**' 'जिससे अतीन्द्रिय आनन्द की शुद्ध परिणति का ज्ञान हो जाए'—ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। जिसमें राग करो और राग से लाभ होगा, वह उपदेश कुआगम का है, गुरु का उपदेश नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं? कि सूक्ष्म परिणाम, सूक्ष्म परिणाम। यह पुण्य-पाप के परिणाम हैं, वे सूक्ष्म नहीं, वे तो स्थूल हैं। क्या कहा, समझ में आया? णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... जाप का भाव वह शुभ है, स्थूल है। स्थूल-स्थूल। होता है, परन्तु वह उपदेश नहीं कि वह करनेयोग्य है और उससे तुझे लाभ होगा। जानने में आवे ऐसी वस्तु आती है व्यवहार, परन्तु गुरुदेव ऐसा उपदेश करते हैं कि जिससे सूक्ष्म परिणाम अतीन्द्रिय आत्मा की शुद्धोपयोग परिणति का ज्ञान हो जाये।

जिस परिणति में रमण करने से... 'कम्म संषिपनं' जिससे कर्मों का क्षय होता है। देखो, समझ में आया? ऐसा श्री गुरुओं का, तीर्थंकरों का, मुनियों का, सम्यग्दृष्टि का उपदेश ऐसा होता है। ऐसे उपदेश में फेरफार करे कि जड़ की क्रिया से तुझे लाभ होगा, शरीर की क्रिया से लाभ होगा और पुण्य परिणाम है तो उससे तुझे धर्म होगा, यह उपदेश गुरुओं का नहीं है। यह कुगुरु का उपदेश है। समझ में आया? धरमचन्दजी! तो परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं? किसका सत्य उपदेश है? कौन गुरु है? क्या शास्त्र है? क्या देव है?

'**गुरुं च विमल सहावं**' देखो, कैसे हैं गुरु? **आत्मा का स्वभाव मलदोषरहित है।** उसका आत्मा ही अन्तर्दृष्टि में आया है कि मैं मल और दोषरहित हूँ। ऐसी परिणति है, उसे गुरु कहते हैं और उस गुरु का उपदेश ऐसा है। समझ में आया? '**दर्सन मोहंध समल गुरुवं च' जो मिथ्यादृष्टि है, उससे विपरीत उपदेश करते हैं व दोषसहित गुरु को गुरु मानता है, वह मूढ़ है।** '**दर्सन मोहंध समल गुरुवं च**' देखो, मल से लाभ होता

है, पुण्य से लाभ होता है, अशुद्ध से लाभ होता है, ऐसा माननेवाला गुरु को गुरु माने तो माननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? परन्तु विचार करता नहीं। होता है, व्यवहार आता है, हों! भक्ति का, व्रत का, श्रवण का, गणधरों को भी व्यवहार आता है, परन्तु वह करनेयोग्य है, ऐसी मान्यता करना, वह मिथ्यादृष्टिपना है। समझ में आया? और स्वभाव का उत्साह छोड़कर उसमें विशेष उत्साह आना... क्या कहा? स्वभाव का उत्साह छोड़कर अकेले शुभभाव में उत्साह बढ़ना, वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। क्या दुर्गादासजी! क्या चलता है? कठिन उपदेश, भाई! यह उपदेशशुद्धसार, भाई! यह माँगा था हमारे शोभालालजी ने कि उपदेशसार में क्या है, वह थोड़ा (समझाओ)। यह है नमूना देखो! समझ में आया? यह तो (टेप में) उतरता है न। वहाँ भी सुनेंगे न! समझ में आया?

गुरुं च मग उवएसं, अमगं सयल भाव गलियं च।
गुरुं च न्यान सहावं, दर्सन मोहंध अन्यान गुरुवं च॥१८४॥

गुरु वही है जो मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। मोक्षमार्ग। अपना छुटकारा राग से, पुण्य से, बन्ध से हो, ऐसा उपदेश देते हैं। समझ में आया? जिससे बन्ध होता है, उसमें लाभ हो, ऐसा गुरु का उपदेश नहीं होता। चौदह पूर्व के सार में यह कहा है। चलती है न गाथा अपने? ज्ञानसमुच्चयसार में। उसका उपदेश क्या है, उसकी यहाँ बात चली है। समझ में आया? और **जिनके भीतर मोक्षमार्ग से विपरीत सर्व भाव गल गये हैं।** गुरु उसे कहते हैं कि अपने स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान रमणता है, उससे विपरीत भाव गल गये हैं, गल गये हैं। गल गये हैं अर्थात् नाश हो गये हैं। मिथ्या भ्रम, पुण्य से धर्म, पाप से सुख, इन्द्रिय में सुख, शरीर में सुख—ऐसी सब बुद्धि गल गयी है, नाश हो गयी है। कहो, समझ में आया?

और '**दर्सन मोहंध अन्यान गुरुवं च**' **गुरु है जिनका स्वभाव सम्यग्ज्ञानमय है।** देखो, '**गुरुवं च न्यान सहावं**' गुरु का स्वभाव ज्ञान चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, ऐसा स्वभाव हो गया है। रागादि, पुण्यादि मैं हूँ, शरीर आदि (मैं हूँ) ऐसा उसका स्वभाव नहीं। ऐसी बात करते हैं, देखो! कठिन पड़ती है, हों! वर्तमान पण्डित और त्यागी तो ... करते हैं।

आहाहा! भगवान की भक्ति में धर्म नहीं? लाख बार धर्म नहीं। क्या है? भगवान की भक्ति में क्या कषाय है? भगवान की भक्ति में राग आता है, वह पुण्य है। वह पुण्य कषाय है। आता अवश्य है, परन्तु वह धर्म का कारण होगा और धर्म है, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा! मुनि को पंच महाव्रत नहीं आते? पंच महाव्रत का राग है। गणधर को राग आता है। वह भी शुभराग है। परन्तु उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं मानते। हमारी निर्बलता है तो ऐसा शुभभाव अशुभ से बचने के लिये शुभ के काल में आता है। परन्तु उपदेश में ऐसा आता है कि यह महाव्रत पालते-पालते तुझे शुद्धोपयोग हो जायेगा (वह) कुगुरु का उपदेश है। समझ में आया? यह सब चलता है न! .... महाव्रत पहले पालन करे तो शुद्ध उपयोग होता है। अरे भगवान! क्या कहता है तू? किसके निकट सुना? तूने शास्त्र सुना ही नहीं।

कहते हैं कि वह तो ऐसा उपदेश देते हैं कि जिससे ज्ञान स्वभाव निर्मल हो और वही **मिथ्यात्व जो उसके ऐसा सम्यग्ज्ञानमय समझते नहीं और मिथ्यात्व से अन्ध है और ज्ञानस्वभाव सिवाय,...** विकार की कोई विकल्प की कल्पना से अपने में धर्म होता है, दूसरे को होता है, ऐसा मानता है। आत्मज्ञान रहित को गुरु मान लेता है तो मिथ्यादृष्टि है। उसे गुरु माने, अपने से बड़ा माने, उसे साधु माने तो मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात है।

गुरुं च लोय पयासं, चेलं ससहाव ग्रंथ मुक्कं च।
ममल सहावं सुद्धं, दर्शन मोहंध समल गुरुवं च॥१८५॥

सच्चे गुरु वह हैं जो लोक को स्वरूप का प्रकाश करते हैं... अपने स्वरूप के साथ जगत के पदार्थ क्या हैं, उनका भी स्वरूप यथार्थरूप से प्रकाशित करते हैं। '**चेलं ससहाव ग्रंथ मुक्कं च' जो बाहर से पंच मेल, समस्त वस्त्र परिग्रह के त्यागी हैं...** मुनि लेते हैं न मुनि? दिगम्बर मुनि, जिन्हें वस्त्र का एक धागा नहीं होता, बाहर में ग्रन्थ परिग्रह वस्त्र का एक धागा नहीं होता, वे चारित्रवन्त गुरु हैं। समझ में आया? **जिनका परिग्रह अन्तरंग में वस्त्र परिग्रह राग के त्यागी हैं।** देखो, दो बातें ली हैं। '**चेलं ससहाव ग्रंथ मुक्कं च**' बाहर में वस्त्र का त्याग, अन्तर से राग-गुण को परिच्छान करते हैं

(अर्थात्) शुभराग आत्मा की शान्ति को ढँक देता है तो उसका आच्छादन छोड़ देते हैं। समझ में आया? बाहर में मात्र वस्त्र छोड़ने से क्या हुआ? अन्दर में विकल्प जो पुण्य-पाप की विकल्प वृत्ति है, वह अपनी शान्ति को ढँकती है, आच्छादन करती है। ऐसी वृत्ति, विकार, पुण्य की वृत्तिरूपी वस्त्र, वृत्ति अर्थात् भाव, उसरूपी वस्त्र का आच्छादन स्वरूप में से छोड़ दिया है। मेरे शुद्ध निर्मल ज्ञान आनन्द है, मुझमें किसी का आच्छादन है नहीं। उसे यहाँ गुरु कहते हैं और उससे विरुद्ध को गुरु मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया?

अब जरा बात फिर से ली है, देखो!

गुरुं सहाव स उत्तं, रागं दोसं पि गारवं तिक्तम्।
न्यानमई उवएसं, दर्सन मोहंध राइ मय गुरुवं॥१८६॥

गुरु का ऐसा स्वभाव कहा गया है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा है न? '**उत्तं**' '**उत्तं**' शब्द पड़ा है न? '**गुरुं सहाव स उत्तं**' स अर्थात् उक्तं। उसे कहा है कि **जिन्होंने राग-द्वेष-मद्य का त्याग कर दिया है।** विकल्प, पुण्य-पाप में से रुचि हट गयी है, अपने स्वभाव में रुचि परिणम गयी है और वीतरागभाव की परिणति है। गुरु उपदेश कैसा करते हैं? कि '**न्यानमई उवएसं**' लो यह उपदेश आया। '**न्यानमई उवएसं**' ज्ञानमय अकेला। अकेला ज्ञानात्मा है। ज्ञान की प्रतीति, वह भी ज्ञान की निर्मल पर्याय रागरहित है। ज्ञान का ज्ञान और ज्ञान का चारित्र, वह भी ज्ञान है, राग नहीं। समझ में आया? यह आता है न भाई समयसार में? ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का समकित, ज्ञान का चारित्र, यह समयसार में आता है। ज्ञान अकेला भगवान चैतन्य ज्ञान पुंज प्रकाश, उस ज्ञान की प्रतीति ज्ञानरूप अर्थात् विकाररहित। ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान की पर्याय रागरहित, ज्ञान का चारित्र ज्ञान में लीन रागरहित। ऐसा ज्ञानमय उपदेश गुरु का होता है।...लालजी! कितने वर्ष निकाले परन्तु विचार न करे, लो! यह तो पुस्तक ऐसी की ऐसी बन्द रखी है। सेठ हाँ करते हैं। समझ में आया?

'**दर्सन मोहंध**' और मिथ्यात्व से अन्ध है। **वह सरागी को ही गुरु मान लेते हैं।** देखो, उससे विरुद्ध लेना है न? उससे। '**दर्सन मोहंध राइ मय गुरुवं**' अर्थात् राग से,

पुण्य से, विकार से, शरीर की क्रिया से, पर से मुझे धर्म होगा, तुझे धर्म होगा, ऐसा माननेवाला, करनेवाला अन्ध है, मिथ्यात्व से अन्ध है। अज्ञानी सरागी को गुरु मान लेता है। वह राग से लाभ माननेवाले को (गुरु) मान लेता है। कहो, समझ में आया? पश्चात् यह उपदेश है।

गुरुं च दर्सन मझओ, गुरुं च न्यान चरन संजुत्तो।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, दर्सन सल्य गुरुवं च॥१८७॥

'**गुरुं च दर्सन मइओ**' पहले ज्ञानमय कहा था न? **कैसा है गुरु? वही जो सम्यग्दर्शन का धारी है और जो सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से सहित है और जिसमें कोई मिथ्यात्व का शल्य नहीं है।** निःशल्योव्रति आता है या नहीं? कहाँ है? तत्त्वार्थसूत्र में। तो जिसे मिथ्यात्व शल्य नहीं, माया शल्य नहीं, निदान शल्य नहीं ऐसे शल्यरहित मेरा ज्ञानस्वरूप, दर्शनमय है, ज्ञानमय है। और **सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है जिसमें कोई... 'मिथ्या सल्य विमुक्कं, दर्सन सल्य गुरुवं च'** मिथ्यादृष्टि तो मिथ्या शल्यधारी को ही गुरु मानता है। राग से लाभ माननेवाला मिथ्यादृष्टि है तो (उसकी प्रशंसा करता है कि) तुमने बड़ी बात की, तुम्हारी बहुत प्रशंसा (करते हैं), तुमने बहुत अच्छी बात की। कहते हैं न ऐसा? समझ में आया?

१३२। श्रुत का उपदेश इसमें है थोड़ा। देखो, १९१ गाथा।

श्रुतं च श्रुत उववन्नं, श्रुतं च न्यान दंसन समग्गं।
श्रुतं च मग उवएसं, दर्सन मोहंध कुश्रुत अन्मोयं॥१९१॥

१९१। १-९-१। यह उपदेशसार की, हों! उपदेशसार की है? क्या कहते हैं? '**श्रुतं च श्रुत उववन्नं**' **शास्त्र वह है जो द्वादशांग वाणी से उत्पन्न हुआ हो...** सर्वज्ञ की वाणी से रचित शास्त्र हो। और कैसा है? **जिसमें सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन का स्वरूप हो।** शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान को बतलानेवाला शास्त्र हो, उसे शास्त्र कहते हैं। **शास्त्र वह है जिसमें मोक्षमार्ग का उपदेश हो।** समझ में आया? **और मिथ्यादृष्टि कुशास्त्र की अनुमोदना करते हैं।** सच्चे शास्त्र को वह मानता नहीं। जिसमें निज शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करने की बात है, उसे मानता नहीं, जिसमें अपने परिणाम का रंजन हो, उसे मानता है। यह आया। श्रावक उपदेश में थोड़ा आया। समझ में आया?

कहते हैं... कौनसी गाथा आयी ? ६०वीं चली ६० । ज्ञानसमुच्चयसार की ६१ गाथा।

विस्व पूर्वं च सुधं च, सुध तत्त्वं समं धुवं।
सुधं न्यानं च चरनं च, लोकालोकं च लोकितं॥६१॥

६१ । '**विस्व पूर्वं च सुधं**' यह शब्द पहले पड़ा है । क्या है ? '**विस्व**' अर्थात् **सर्व ही...** विश्व अर्थात् समस्त । **चौदह पूर्व शुद्ध... 'पूर्वं च सुधं' सर्व ही चौदह पूर्व...** चौदह पूर्व, सर्व पूर्व । यहाँ विश्व अर्थात् सर्व । चौदह पूर्व **शुद्ध व दोषरहित हैं...** उसमें कथन ही निर्दोष वीतरागी परिणति का आया है । ओहो ! समझ में आया ? यह पंचास्तिकाय में कहते हैं न, शास्त्र तात्पर्य । दो प्रकार का तात्पर्य चलता है—सूत्र तात्पर्य, एक शास्त्र तात्पर्य । सूत्र तात्पर्य एक-एक श्लोक में क्या कहते हैं, वह सूत्र तात्पर्य और सर्व शास्त्र का तात्पर्य वीतरागभाव । निज स्वभाव के सन्मुख होना और राग से हटना, ऐसे सर्व शास्त्र का वीतरागभाव तात्पर्य है । समझ में आया ? चार अनुयोग में वीतरागभाव की तात्पर्यता है । वीतराग हुए, वे तो वीतरागता बतावे या वीतराग हुए वे राग करने का बतावे ?

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते वीतराग होंगे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होंगे । राग करते-करते, लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी । नहीं । नहीं आयेगी ? शोभालालजी ! लहसुन खाता है लहसुन । प्याज होता है न । प्याज खाते-खाते... घी में तलकर खाये तो ? घी में तलकर... समझ में आया न ? खाये तो उसकी डकार आयेगी । किसकी ? कि कस्तूरी की । धूल में भी नहीं आयेगी । राग और विकार करते-करते कभी धर्म हो तो लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आना चाहिए । ऐसा नहीं होता । देखो यह कहते हैं ।

'**विस्व पूर्वं च सुधं**' ओहो ! चौदह पूर्व शुद्ध निर्दोष है । '**सुध तत्त्वं समं धुवं**' और **शुद्ध आत्मिक तत्त्व को साम्यरूप व नित्य बताते हैं...** चौदह पूर्व वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान करने का कहते हैं । यह तो लोग भाई ! उसे ऐसा ही मानते हैं । वह व्यवहार की बात नहीं आती ? कि व्यवहार का लोप कर डालते हैं । परन्तु यह शास्त्र का आदर कहते हैं, वाणी का आदर करना, वह व्यवहार नहीं ? भगवान को याद किया, जिनोक्तं-जिनोक्तं क्या है ? विकल्प है, शुभराग है । आता तो है । उसे ऐसा दिखता है कि अरे ! अरे ! यह व्यवहार से लाभ मानते नहीं, व्यवहार से लाभ मानते नहीं । लाभ मानना अलग बात है

और व्यवहार आना अलग बात है। समझ में आया?

तो कहते हैं, **सर्व ही चौदह पूर्व... 'सुधं न्यानं च चरनं' शुद्ध ज्ञान व शुद्ध चारित्र का उपदेश करते हैं...** देखो! सर्व चौदह पूर्व शुद्ध निश्चय समकित का उपदेश देते हैं, शुद्ध सम्यग्ज्ञान का और शुद्ध वीतराग का, निश्चय रत्नत्रय का ही उपदेश वीतराग करते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! और **'लोकालोकं च लोकितं' तथा लोक और अलोक के स्वरूप को दिखलानेवाले हैं।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए (तो) लोक-अलोक क्या है, यह श्रुतज्ञान में आ जाता है। श्रुतज्ञान में उसके अस्तित्व की श्रद्धा समकिती को आ जाती है। भगवान चौदह पूर्व में ऐसा उपदेश करते हैं। कहो, समझ में आया? इसमें तो दूसरी बात थोड़ी उतारी है भाई ने। यह उतारी है न! देखो! सामायिक का तो आ गया न? एक जल छानने की व्याख्या की है। १५५ पृष्ठ पर। १५५ है न, देखो। जल छानना परमार्थ से किसे कहते हैं? जल छानना है न, व्यवहार जल छानना है शुभ विकल्प। समझ में आया? परन्तु यह ज्ञानसमुच्चयसार है या नहीं? इसका २९० श्लोक। २९०। है?

जल गालन उवएसं, प्रथमं सम्मत्त सुध भावस्स।
चित्तं सुध गलंतं, पच्छिदो जलं च गालम्मि॥२९०॥

श्रावकों को पानी छानकर पीने का उपदेश है। प्रथम यह आवश्यक है कि उनके भावों में शुद्ध सम्यग्दर्शन हो। राग से छानकर शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो। राग को छानकर निकाल डाला हो। समझ में आया? यह तो गाथा उतरती है। इसमें से उतार लेना। पानी छानते हैं तो कहते हैं कि **'प्रथमं सुध भावस्स सम्मत्त'** अशुद्धभाव में से छानकर शुद्धभाव निकाल लेना। अपना स्वभाव शुद्धभाव अशुद्ध से छानना, इसका नाम पहले सम्यग्दर्शन कहा जाता है। वह यह जलछानन इसका नाम है। यह तो कहे इतना छानो, इतना छानो, फिर पानी डालो। पश्चात् .... करे जहाँ से पानी लाये हों वहाँ छोड़ देना। यह जीवाणी होते हैं न, क्या कहते हैं वह? जीवाणी। ... हो गया। अरे! यह तो शुभविकल्प है और छानने की क्रिया होती है, वह तो जड़ की, पर की क्रिया होती है। वह तुझसे कहाँ होती है उसमें? यह छानने का छन्ना कहते हैं न छन्ना? क्या कहते हैं? छन्ना। ऊँचा-नीचा हो, ऐसा हो, ऐसा हो, वह तो जड़ पर की क्रिया है, वह कहीं

तुझसे होती है ? ऐई ! धर्मचन्दजी ! वह तो पर की क्रिया है। पर की क्रिया मुझसे होती है, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। घर में पानी छानते होंगे तुम। राग से मैं भिन्न हूँ, ऐसी तुझे खबर नहीं तो ऐसी क्रिया का अभिमान करता है।

और **व अपने चित्त से दोषों को हटाकर साफ करें,...** देखो, **'चित्तं सुध गलंतं' चित्त से दोषों को हटाकर साफ करें, चित्त को छाने...** अकेला बाहर में मान लिया, क्रियाकाण्ड में धर्म मान लिया। पानी छानकर पीते हैं और ऐसा करते हैं और वैसा करते हैं और देखो तो कषाय तीव्र, ... और पैसा माँगे। लाओ पैसा हमारे... अरे ! भिखारी है तू ? माँगता है... तेरे चित्त को राग से छानना, ऐसे चित्त की शुद्धि तो हुई नहीं। समझ में आया ? **'पच्छिदो जलं च गालम्मि'** भाई ! ऐसा लिया, देखो ! पहले चित्त शुद्धि करके पश्चात् पानी छानने की क्रिया का शुभराग आता है। ऐसी बात करते हैं। बात तो बहुत अच्छी की है। देखो, समझ में आया ? वह अकेले क्रियाकाण्ड में घुस गये थे न ? यह पानी छानकर पीते हैं और कुँए में से निकालते हैं, ऐसे नितारते हैं... अब वह तो पर की क्रिया है परपदार्थ की। तुझमें क्या आया ? तू कर सकता है ? तुझे उस समय पानी छानने का भाव हो, दोष न हो तो शुभभाव है। तो शुभभाव तो मलिन है। उससे भी अपने शुद्ध आत्मा को छानकर निकाला नहीं तो तुझे पानी छानकर पीने का भाव, उसे व्यवहार भी नहीं कहा जाता। क्या कहा, समझ में आया ? पानी छानने का शुभभाव हुआ, वह शुद्धभाव हुए बिना तेरा शुभभाव व्यवहार में भी गिनने में नहीं आता। शुद्धभाव हो तो ऐसा भाव आवे तो शुभराग को व्यवहार कहा जाता है। क्रिया तो पर से होती है, अपने से नहीं होती।

फिर पानी को छानकर पीवें। है न पाठ ? यह पीछे का बोल रह गया, पहले का बोल चल गया। पानी छानकर पीना। परन्तु कौनसा पानी ? तेरा ज्ञानजल है अन्दर शुद्ध चिदानन्दमूर्ति भगवान जल है, उसे राग के कण से निकालकर पानी पीना, पश्चात् उस पानी को पीने का विकल्प आता है, उसे शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण कहते हैं। आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह वास्तव में पानी छानने का स्वभाव उसमें आता नहीं।

मुमुक्षु : ....हो उसे छाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छाने। देखो, यह इसमें से आया, हों! यह ज्ञानसमुच्चयसार में से। २९१।

मन सुधं चित्तगालं, भाव सुधं च चेयना भावं।
चेयन सहित सुभावं, जलगालन तंपि जानेहि॥२९१॥

शब्द तो बहुत सरल है। उसमें कोई संस्कृत बहुत नहीं है। **मन को शुद्ध रखना चित्त का छानना है।** पुण्य-पाप से रहित अपने ज्ञान की दशा रखना, वह चित्त का छानना है। उसने पानी छाना है। रतनलालजी! सुना था? पहले कभी ऐसा सुना था कि पानी छानना ऐसा है। सुना ही नहीं। पुस्तक में लिखा है। तारणस्वामी ने लिखा है, देखो! यह लिखा है, इसका तो अर्थ होता है। कैसे? ...लालजी! और '**भाव सुधं च चेयना भावं**' देखो, **शुद्ध भाव में होकर चेतना का अनुभव करना...** चेतना का अनुभव करना, वह जलछानन है।

'**चेयन सहित सुभावं**' **चेतनासहित स्वभाव में लय हो जाना।** '**तंपि जल गालन जानेहि**' **इसको भी जल गालन जानो।** निश्चय का अर्थ यह है। व्यवहार तो विकल्प आता है। देखो! फिर रात्रिभोजन त्याग, देखो।

अनस्तमितं उवएस, पढमं सम्मत्त चरण संजुत्तं।
जस्य नअनस्तं दिट्ठं, तस्ययं मिथ्यादि भावमप्पानं॥२९२॥

रात्रिभोजन त्याग का उपदेश करते हैं। प्रथम तो श्रावक को सम्यग्दर्शन व अपने योग्य आचरणसहित होना चाहिए। इसके बिना रात्रिभोजन का त्याग व्यवहार से भी नहीं कहा जाता। समझ में आया? कभी रात्रिभोजन त्याग करते-करते धर्म होता है या नहीं? कभी-कभी बेड़ा पार होगा। कहते हैं, तीन काल में नहीं। यह राग की मन्दता है, शुभभाव है। परन्तु इसके साथ देखो **श्रावक को सम्यग्दर्शन व अपने योग्य आचरणसहित होना चाहिए।**

'**जस्य नअनस्तं दिट्ठं**' देखो अब। **जिसके सम्यग्दर्शन अस्त न हो...** यह सम्यग्दर्शन अस्त अर्थात् नाश नहीं पावे, इसका नाम रात्रिभोजन का त्याग है। '**नअनस्तं**' कहा न? अन-आत्मा का त्याग, ऐसा कहते हैं न! अस्त हुए पहले, सूर्य अस्त हुए पहले त्याग।

तो उसका क्या ? सम्यग्दर्शन (होने में) पहले उसका—राग का त्याग होना चाहिए। अपने सम्यग्दर्शन का नाश न हो, पश्चात् रात्रिभोजन का विकल्प आया है कि रात्रिभोजन नहीं करना। वह तो ऐसा भाव आता ही है। परन्तु अकेला रात्रिभोजन न करे और शुभभाव है, तो उसमें संवर-निर्जरा होती है या यह धर्म है नहीं। समझ में आया ? देखो।

उसकी ही आत्मा में मिथ्यारागादि भाव न होंगे। जिसके सम्यग्दर्शन अस्त न हो। पाठ में देखो। '**जस्य दिट्ठं न अनस्तं**' जिसकी सम्यग्दृष्टि अस्त न हो। अस्त न हो जाये। आथमी जाय कहते हैं न ? सूर्य अस्त होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन जिसे अस्त न हो, उसका आत्मा मिथ्या रागादि रहित होता है, उसे वास्तव में रात्रिभोजन का त्याग कहा जाता है। अब स्वयं कहते हैं कि भाई! हम अकेले नहीं कहते, भगवान भी कहते हैं। ऐसा लेते हैं। २९३ (गाथा)।

अप्पानं मप्पानं, सुधप्पा भाव विमल परमप्पा।
एयं जिनेहि भनियं, अनस्तमितं तंपि जानेहि॥२९३॥

जो आत्मा को आत्मा जाने। भगवान शुद्ध चैतन्य ज्ञानप्रकाश मैं आत्मा हूँ, ऐसा अन्तर आत्मा को जाने। '**सुधप्पा भाव विमल परमप्पा' कि यह निश्चय से शुद्ध स्वरूप है, जिसका भाव मलरहित परमात्मा...** अपना स्वरूप ही परमात्मा पूर्ण है। मेरे गर्भ में परमात्मा ही मैं पड़ा हूँ। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान अनुभव सहित है, **उसको रात्रिभोजन का त्यागी जानों, ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा है।** समझ में आया ? भाई! जिनेन्द्र ने कहा है, ऐसा किसलिए डाला ? कि भाई! अकेला व्यवहार का त्याग है, उसे व्यवहार भगवान ने नहीं कहा। ऐसा कहते हैं। **जिनेन्द्रों ने कहा है।** समझ में आया ? लोग कहते हैं, व्यवहार-व्यवहार,... नहीं... नहीं... ऐसा जिनेन्द्र ने कहा नहीं। जिनेन्द्र ने ऐसा कहा है कि अपने आत्मा में राग मल से रहित सूर्य अस्त न हो, ऐसी दृष्टि निश्चयपूर्वक रात्रि में आहार नहीं करने का भाव, उसे व्यवहार कहते हैं, इसे निश्चय कहते हैं। ऐसा जिनेन्द्र का उपदेश है। जिनेन्द्र का ऐसा उपदेश नहीं कि तुम पहले व्यवहार करो और फिर निश्चय होगा और व्यवहार करो, उसे व्यवहार कहते हैं। ऐसा जिनेन्द्र कहते नहीं। समझ में आया ? कितनी गाथा हुई ? चलती गाथा, हों! ६१ गाथा हुई। लो! '**लोकितं**' लोकालोक के पदार्थ का स्वरूप भी यथार्थ कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)